



## शांति

Dr. Sarla Jangir

Hindusthan College of Arts & Science, Coimbatore

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥1

‘ईशावास्योपनिषद्’

यह मंत्र पूर्णता का प्रतीक है। इसका अर्थ है- परमात्मा (ब्रह्म) पूर्ण है, और यह जगत भी उस पूर्ण ब्रह्म से ही निकला है, इसलिए यह भी पूर्ण है। पूर्ण से पूर्ण को निकालने (सृष्टि की रचना) के बाद भी जो शेष रहता है, वह पूर्ण ही रहता है। यह अविनाशी सत्य है।

‘शांति’ शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा से है। यह धातु "शम्" (śam) से निकला है, जिसका अर्थ शांत करना या प्रसन्न होना होता है, और प्रत्यय "-ति" (-ti) के साथ मिलकर "शान्ति" (śānti) बनता है। 'शांति' शब्द भाववाचक संज्ञा है, जो विशेषण 'शांत' से बना है। 'शांति' शब्द का अर्थ स्थिरता, शांत या संतुष्ट होने की भावना को दर्शाता है। यह शब्द मानसिक स्थिरता, सुकून, और युद्ध या संघर्ष के अभाव को दर्शाता है, जिसे भारतीय संस्कृति में सकारात्मकता और आध्यात्मिक पूर्णता का प्रतीक माना जाता है। हम शांति का अर्थ केवल 'शोर की अनुपस्थिति' या 'युद्ध का न होना' समझ लेते हैं, लेकिन भारतीय दर्शन और साहित्य की दृष्टि इससे कहीं अधिक व्यापक है।

ऋग्वेद में शांति की परिभाषा: हिन्दू धर्म ग्रंथों के अनुसार चार वेद - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद होते हैं। वेदों में मानव मात्र के कल्याण और शांति के लिए योग, संन्यास, यज्ञ, मंत्र, पूजा- पाठ, गुरु- दीक्षा और हठ- योग की भी चर्चा की गई है। भारतीय पुरातन संस्कृति के अनुसार प्रथम वेद 'ऋग्वेद' में शांति की परिभाषा में सभी ग्रहों और देवताओं से मानव- मात्र के कल्याण, सुख और शांति प्रदान करने की प्रार्थना इस प्रकार की है-

“शं नो मित्रः शं वरुणः।  
 शं नो भवत्वर्षमा।  
 शं न इन्द्रो बृहस्पतिः।  
 शं नो विष्णुरुक्रमः ॥”2

— ऋग्वेद 1.89.1

**भावार्थ:**

मित्र, वरुण, अर्यमा, इन्द्र, बृहस्पति और विष्णु — ये सभी देवता हमें (मानव- मात्र) कल्याण, सुख और शांति प्रदान करें।

**श्रीमद्भगवद्गीता में शांति की परिभाषा -**

**आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।**

**तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥3**

(अध्याय 2, श्लोक 70)



भावार्थ- समुद्र में सभी नदियों का समागम स्वाभाविक, निश्चित और अटल है। विश्व की सभी नदियों के जल प्रवेश से भी समुद्र विचलित नहीं होता और अपनी मर्यादा में स्थिर रहता है, उसी प्रकार जिस व्यक्ति के भीतर सभी इच्छाएं (कामनाएं) बिना किसी विकार के समा जाती हैं, वही **परम शांति** का अधिकारी होता है। इसके विपरीत, जो व्यक्ति अपनी इच्छाओं के पीछे भागता है (कामी), उसे शांति कभी नहीं मिलती। मनुष्य मात्र के हृदय से कामनाओं की निवृत्ति ही परम शान्ति का उपाय है। कामनाओं की निवृत्ति ही करनी चाहिए, न कि पूर्ति की चेष्टा। सांसारिक भोग पदार्थों की चाहत से सुख उत्पन्न होता है -- इससे ही कामना पैदा होती है। कामनाओं की प्राप्ति में जितना अधिक कष्ट होगा, उससे प्राप्त आनंद का सुख भी उतना ही अधिक होगा। सांसारिक मनुष्य उसे ही सच्चा सुख मानकर उसकी लालसा में भ्रमित रहता है। यहाँ समुद्र और मन दोनों की विशालता, गहनता और प्रवृत्ति की परस्पर समानता बताई है। समुद्र का उपरी सतह अशांत और लहरों का आगमन- विलयन लगा रहता है, पर उसका तल शांत रहता है। उसी तरह मनुष्य संसार के सुख-दुख, मान-अपमान और लाभ-हानि से विचलित रहता है, परन्तु उसी मन में ध्यान और आत्म-चिंतन के माध्यम से वह आत्मशांति और सच्चे सुख को प्राप्त करता है।

**यजुर्वेद** के अनुसार शांति की परिभाषा-

‘ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः।

पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।

वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः।

सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्ति सा मा शान्तिरेधि॥’<sup>4</sup>

यजुर्वेद (36.17)

**शान्ति पाठ का अर्थ:**

1. **प्रथम पंक्ति का अर्थ - ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः:** स्वर्ग (द्वयुलोक) में शांति हो, अंतरिक्ष में शांति हो।
2. **द्वितीय पंक्ति का अर्थ- पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः:** पृथ्वी पर शांति हो, जल (आपः) में शांति हो, औषधियों में शांति हो।
3. **तृतीय पंक्ति का अर्थ- वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः:** वनस्पतियों में शांति हो, समस्त देवगणों में शांति हो, ब्रह्म (परमात्मा) में शांति हो।
4. **चतुर्थ पंक्ति का अर्थ- सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः:** सर्वत्र शांति हो, शांति ही शांति हो।
5. **पंचम पंक्ति का अर्थसा मा शान्तिरेधि:** वह शांति मुझे प्राप्त हो (मेरे भीतर समाहित हो)।

वैदिक परंपरा में प्रत्येक पूजा और यज्ञ के अंत में '**शान्ति पाठ**' केवल शब्दों का उच्चारण नहीं है, बल्कि यह **ऊर्जा के संतुलन** की एक प्रक्रिया है। ब्रह्मांड में ऊर्जा के विभिन्न रूप हैं—ताप, गति, गुरुत्वाकर्षण और चेतना आदि। **शांति पाठ का कार्य** इन ऊर्जा के पुंज को "शांत" करने की प्रार्थना करता है।

यह **शान्ति पाठ** उन ऊर्जा के समूह को एक '**लय**' में लाने का मंत्र है। जब ये सारी ऊर्जा जब लयबद्ध होती है, तो सृजन करती हैं, और जब लय टूटती है, तो वह विध्वंसक हो जाती है।



‘चरक संहिता’ के अनुसार शांति की परिभाषा-

‘यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे’<sup>5</sup>

### 1. ब्रह्मांड और मानव शरीर में समानता -

ब्रह्मांड में: पृथ्वी (पहाड़), जल (सागर), अग्नि (सूर्य), वायु (हवा) और आकाश (रिक्तता)।

शरीर में: पृथ्वी (अस्थियां), जल (रक्त), अग्नि (पाचन/ताप), वायु (प्राण) और आकाश (अन्तःकरण)।

### 2. ऊर्जा केंद्रों का सामंजस्य-

ब्रह्मांड में- पाताल से लेकर ब्रह्मलोक तक।

शरीर में- मूलाधार चक्र (पृथ्वी तत्व/स्थिरता) से लेकर सहस्रार चक्र (चेतना/ब्रह्म) तक।

अर्थ- योगी, सन्यासी, हठ- योगी अपने भीतर के चक्रों को जाग्रत कर ब्रह्मांड के रहस्यों को पता लगाते थे।

### 3. सूर्य और चंद्रमा की स्थिति-

ब्रह्मांड में: सूर्य दिन का और चंद्र रात का स्वामी है।

शरीर में: हमारी नासिका के दो स्वर— पिंगला नाड़ी (शरीर का दायाँ भाग) सूर्य स्वर और इड़ा नाड़ी (शरीर का बायाँ भाग) चंद्र स्वर।

सूर्य-चंद्र के संतुलन से ऋतुएँ चलती हैं, उसी प्रकार इड़ा-पिंगला के संतुलन से हमारा स्वास्थ्य संतुलित रहता है।

### 4. चेतना और दर्शन -

अब इसे आधुनिक विज्ञान भी मानने लगा है।

विज्ञान: एक परमाणु की संरचना वैसी ही है जैसी एक सौरमंडल की। केंद्र में नाभिक है और चारों ओर इलेक्ट्रॉन घूम रहे हैं, जैसे सूर्य के चारों ओर ग्रह।

दर्शन: जो 'परमात्मा' पूरे ब्रह्मांड को चला रहा है, वही 'आत्मा' के रूप में हमारे भीतर बैठा है।

इस ज्ञान को प्राप्त करने के बाद ‘ईशावास्योपनिषद् का श्लोक’ जो निबंध की शुरुआत में लिखा, वो यहाँ पूर्णतः सिद्ध होता है। अब शांति की व्याख्या को समझने के बाद उसके प्रकारों पर विचार करते हैं।

‘ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥’ - किसी भी मन्त्र में शांति शब्द का उच्चारण तीन बार किया जाता है। इसके पीछे एक उद्देश्य होता है। सांसारिक मनुष्य के लिए तीन प्रकार की शांति की बात कही गई है-

#### 1. “आधिभौतिक शांति” -

“आधिभौतिक शांति” की व्युत्पत्ति- अधि (उपसर्ग) + भूत (मूल शब्द)+ इक् (प्रत्यय) संस्कृत के 'ठक्' प्रत्यय से 'इक्' बनता है। जब किसी शब्द में 'इक्' प्रत्यय जुड़ता है, तो शब्द के पहले स्वर में वृद्धि हो जाती है (जैसे 'अ' का 'आ' हो जाना)।

**इसका शाब्दिक अर्थ** यह है कि वह शांति जो भौतिक जगत, इंद्रियों, शरीर और बाह्य वातावरण से जुड़े कष्टों से मुक्त होने पर आती है।



यह सर्वविदित है कि महात्मा गाँधी के विचार और जीवन हमेशा सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चला। आज़ादी के युद्ध में जिनके सामने खड़े रहना था, वो सिर्फ हिंसा की भाषा को जानते थे। लेकिन उन्होंने जवाब सिर्फ हिंसा के बदले अहिंसा ही रहा।

"शांति का कोई मार्ग नहीं है, शांति ही मार्ग है"। 6

उनका यह विचार उनके 'अहिंसा' के सिद्धांत का आधार है, जो आधिभौतिक शांति (दूसरों के साथ शांति) सुनिश्चित करता है।

महात्मा बुद्ध ने अहिंसा और करुणा का सन्देश विश्व को दिया। उनके शब्दों में-

"जयं वेरं पसवति दुक्खं सेति पराजितो" 7

अर्थात् -विजय से वैर पैदा होता है और पराजित व्यक्ति दुख में सोता है। इस पंक्ति का भावार्थ है कि बुद्ध ने सिखाया कि वास्तविक आधिभौतिक शांति तभी आती है जब हम जीत और हार' के अहंकार से ऊपर उठ जाते हैं।

## सामान्य जीवन में इसका प्रभाव क्षेत्र-

युद्ध (बाहरी/ गृह युद्ध),

जंगली जानवरों का आक्रमण,

जाति, लिंग, धर्म के आधार पर भेदभाव से उत्पन्न घटनाएँ,

कोरोना संकट,

सामाजिक- कुरीतियाँ और कुप्रथाएं(कन्या वध, बाल- विवाह, दहेज प्रथा आदि)।

## 2. आधिदैविक शांति -

आधिदैविक शब्द की व्युत्पत्ति- अधि (उपसर्ग)+देव (मूल शब्द)+ इक् (प्रत्यय): संस्कृत व्याकरण के अनुसार, जब 'ठक्' (इक्) प्रत्यय जुड़ता है, तो शब्द के प्रथम स्वर 'अ' की वृद्धि होकर वह 'आ' हो जाता है।

इस शब्द का प्रयोग कष्टों या स्थितियों के लिए प्रयोग किया जाता है, जो मनुष्य के अपने नियंत्रण में नहीं होतीं और जिनका कारण बाहरी भौतिक जगत (प्राणियों) में नहीं, बल्कि 'प्रकृति' या 'दैव' में होता है।

महर्षि अरविन्दो ने आधिदैविक शांति को एक ऊँचे आध्यात्मिक विकास से जोड़ते हुए 'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे' के सिद्धांत की पुष्टि दी। यदि हमारा 'पिण्ड' (शरीर) ब्रह्मांड के नियमों को समझ ले, तो आधिदैविक कष्ट समाप्त हो जाते हैं। यह मनुष्य जीवन- साधना की उच्च स्थिति होती है, जो बुद्ध को प्राप्त हुई। महर्षि अरविन्दो का कथन इस प्रकार है-

"प्रकृति (Nature) तब तक हमारे लिए बाधा या 'अशांत' बनी रहती है, जब तक हम उसे अपने से अलग समझते हैं। जिस दिन मनुष्य अपनी चेतना को ब्रह्मांडीय चेतना से जोड़ लेता है, उस दिन आधिदैविक शक्तियाँ उसकी सहायक बन जाती हैं।"8

## सामान्य जीवन में इसका प्रभाव क्षेत्र-



प्राकृतिक आपदाएं (भूकंप, बाढ़, महामारी, ज्वालामुखी का फटना, सुनामी आदि)

### 3. आध्यात्मिक शांति-

आध्यात्मिक शब्द की व्युत्पत्ति —अधि (उपसर्ग)+आत्म (मूल शब्द)+इक् (प्रत्यय): प्रत्यय जुड़ने पर 'अ' का 'आ' हो जाता है (वृद्धि संधि)।

इसका शाब्दिक अर्थ: वह जो 'आत्मा' या 'स्वयं' के आंतरिक स्वरूप से जुड़ा हो।

योग दर्शन के प्रणेता पतंजलि ने आध्यात्मिक शांति को 'योग' का लक्ष्य और योग से प्राप्ति माना है।

'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'<sup>9</sup>

अर्थात् - योग वह है जो मन की चंचल लहरों/वृत्तियों को शांत कर दे।

स्वामी विवेकानंद जी, जो युवा शक्ति के प्रणेता माने जाते हैं, उन्होंने आध्यात्मिक शांति को मनुष्य की 'आंतरिक शक्ति' से जोड़ा है। आपका कथन भी 'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे' के विचार को प्राण देता है। उनके शब्दों में-

"अध्यात्म का अर्थ है यह जानना कि आप स्वयं अनंत शक्ति के भंडार हैं। जब तक आप स्वयं पर विश्वास नहीं करते, तब तक आप ईश्वर पर विश्वास नहीं कर सकते। शांति बाहर से नहीं, आपके भीतर से आती है।"<sup>10</sup>

### सामान्य जीवन में इसका प्रभाव क्षेत्र-

जादू-टोना, अंध-विश्वास, आडम्बर, पाखंड, भ्रम पैदा करना आदि।

### सामान्य जीवन को बेहतर बनाने के लिए मनुष्य द्वारा की गई जाने वाली पहल-

1. वसुधैव कुटुंबकम की भावना।
2. स्वहित की बजाय परहित के बारे में सोचना।
3. जीवन का उद्देश्य मानव मात्र का कल्याण।
4. अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यों का बोध।
5. आत्म-संतुष्टि की भावना।
6. काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, अहं जैसे विकारों का त्याग।
7. ममता, सहानुभूति, त्याग, करुणा, क्षमा, समर्पण जैसे भावों की प्रवृत्ति।
8. कुंठित, दमित, लालसा जैसे कामनाओं से निवृत्ति।
9. मानव मात्र को अपने मन का निर्वहन नदियों की भांति नहीं करना चाहिए, क्योंकि नदियों का स्वभाव चलायमान और सब कुछ (मिट्टी, कंकड़, धूल) साथ लेकर चलने वाला होता है, लेकिन मन को सागर की भांति अभ्यासित करना चाहिए।

'सार-सार को गहि रहै, थोथा देई उड़ाय ॥'



‘शांति’ किसी खाली कमरे में किसी व्यक्ति के मन में चल रहे विचारों का संघर्ष नहीं है, बल्कि भीड़ की जगह पर भी विचारों का शून्य होकर मनुष्य का आत्म केंद्रित हो जाना। जनकल्याण या दूसरों के लिए किया गया प्रयास में हमें शांति का अनुभव करता है। किसी गरीब आदमी के लिए दो वक्त की रोटी का जुगाड़ करना ही उसे शांति देता है और किसी धनी व्यक्ति का सभी विलासताओं को पाकर भी उसका मन का अशांत रहना, उसके दुख का कारण बनता है। प्राणी का अपेक्षाओं से रहित होना संतोष देता है। संतोष - तृप्ति - आनंद- आंतरिक सुख- शांति।

कबीरदास जी ने तो मन की शांति मधुर वाणी के बोलने से बताई है। मीठी वाणी से मनुष्य स्वयं और सामने वाले दोनों को तृप्त कर देता है। तृप्ति भी शांति प्राप्ति का आधार है -

‘ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय।

औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय॥’10

**सामान्य मनुष्य द्वारा शांति को प्राप्त करने के पहलू -**

### 1. समत्व-

यह एक भाव है, जो कभी- कभी स्वत (जो महात्मा बुद्ध ने साधना से पाया) या फिर अर्जित (जो श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्म के ज्ञान में दिया) किया जाता है।

समत्व भाव का सामान्य अर्थ - अर्थात् समानता का भाव, मनुष्य के प्रत्येक कर्म में समान व्यवहार।

सबसे पहले इस भाव का मर्म श्रीमद्भागवत में महाभारत के युद्ध के दौरान हुआ। जब भगवन श्री कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध करने के लिए कहा-

**‘योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।**

**सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥’ 11**

**अर्थ:** हे अर्जुन! जय-पराजय, लाभ-हानि और सिद्धि-असिद्धि (सफलता-विफलता) में **समान भाव** रखकर अपने कर्तव्य का पालन करो। इसी समता की स्थिति को ‘योग’ कहा जाता है।

**गीता में** समत्व भाव को समत्व रखकर, फल की चिंता को छोड़कर कर्म में संतुलन करना है।

**बौद्ध धर्म में** समत्व भाव को उपेक्षा की स्थिति कहा, जिसमें मानसिक तटस्थता अनिवार्य है।

**जैन धर्म में** समत्व भाव को सामायिक(समय के अनुरूप), जिसमें राग-द्वेष से मुक्ति हो।

**संतधारा में** समत्व भाव को सहजता मानकर साधारण जीवन में बना रहने वाला मानसिक ठहराव है।

इस आधार पर तीन तरह का समत्व कहा जा सकता है-

1. **मानसिक समत्व:** सुख-दुख में विचलित न होना।



2. **बौद्धिक समत्व:** लाभ-हानि का सही विश्लेषण करना बिना भावुक हुए।
3. **कर्मज समत्व:** परिणाम की परवाह किए बिना सर्वश्रेष्ठ प्रयास करना।

वास्तव में यह भाव प्राणी मात्र में सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय, यश-अपयश, जीवन-मृत्यु आदि जगत प्रदत्त की किसी भी स्थिति में तटस्थ, निर्विकार, अनासक्त रहना सीखता है। यह केवल एक शब्द नहीं, बल्कि एक मानसिक अवस्था है, जिसमें मनुष्य अपनी वर्तमान परिस्थितियों में तटस्थ रहकर कर्म, परिणाम की चिंता किए बगैर पूर्ण निश्चिन्त रहता है। अर्थात् पूरी निष्ठा से कर्म करना, उसका परिणाम जो भी हो, उसे प्रसन्नता से स्वीकार करना। यह स्थिति हर मनुष्य को उसकी अपनी विशिष्टता को पहचानने की शक्ति देता है। इसका यही अर्थ हुआ कि जितना मिले उतना पर्याप्त है, इससे आगे किसी भी तरह का मानसिक भटकाव नहीं। समत्व भाव वाला व्यक्ति वह नहीं है, जिसके पास पहले से सब कुछ है; बल्कि वह है जो अपने सर्वश्रेष्ठ कर्म से जो भी प्राप्त करता है, उसी में संतुष्ट है। मानवीय मस्तिष्क हमेशा उस चीज़ पर ध्यान केंद्रित करता है जो नहीं है। यह भाव मस्तिष्क को प्रशिक्षित करता है उस चीज़ को देखने के लिए जो है, अर्थात् समता किसी भी परिस्थिति में एक जैसा आचरण, व्यवहार, कर्म।

## 2. प्रेम-

प्रेम का यह स्वरूप जो केवल मानवीय सीमाओं या व्यक्ति-विशेष तक सीमित न रहकर संपूर्ण 'चराचर जगत' (जड़ और चेतन) को आलिंगन में ले लेता है। जब हम प्रेम को एक संकुचित भाव की बजाय एक वैश्विक चेतना के रूप में देखते हैं, तो हमारे और सृष्टि के बीच का द्वैत समाप्त हो जाता है। चराचर जगत से प्रेम करने का अर्थ है—उस परम तत्व या 'सार' को हर कंकड़, हर वृक्ष और हर जीव में अनुभव करना।

कबीर जब कहते हैं कि-

"लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल,

लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।" 12

वे इसी एकात्म भाव की ओर संकेत करते हैं जहाँ प्रेमी और प्रियतम (सृष्टि) के बीच की दीवार गिर जाती है।

यही वैश्विक प्रेम की सार्थकता मानव को 'अधिकार' से 'आत्मीयता' की ओर ले जाता है। एक आम मनुष्य जब किसी सुंदर फूल को देखता है, तो उसे तोड़कर अपना बना लेना चाहता है—यह मोह है। लेकिन जो चराचर से प्रेम करता है, वह उस फूल के खिलने में ही अपनी तृप्ति पाता है और उसे उसके अस्तित्व के साथ स्वीकार करता है—यह प्रेम है। यहाँ प्रेम एक कर्म नहीं, बल्कि एक मानसिक अवस्था बन जाता है।

## 2. करुणा- ऋत और यज्ञ का भाव

वैदिक परंपरा में करुणा हृदय का केवल एक भाव नहीं, बल्कि 'ऋत' (ब्रह्मांडीय नियम) को बनाए रखने का तरीका है।

प्रकृति हमें बिना मांगे सब कुछ देती है (सूर्य, वायु, जल)। इसे 'यज्ञ' कहा गया है—दूसरों के लिए स्वयं का अर्पण।

करुणा का स्वरूप: करुणा का अर्थ यहाँ 'ऋण' उतारना भी है। चराचर जगत (पशु, पक्षी, वृक्ष) के प्रति हमारी करुणा इस बोध से आती है कि हम सब एक परस्पर निर्भर चक्र का हिस्सा हैं। जब हम किसी वृक्ष या जीव पर करुणा करते हैं, तो हम वास्तव में इस ब्रह्मांड के संतुलन को बनाए रखते हैं।

भारतीय वैदिक परंपरा में इसे 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' कहा गया है—अर्थात् सभी प्राणियों को अपने समान देखना। उपनिषदों का 'वसुधैव कुटुंबकम्' का विचार करुणा की ही वैश्विक अभिव्यक्ति है, जहाँ पूरा विश्व ही एक परिवार बन जाता है। यहाँ प्रेम मानवीय सीमाओं को तोड़कर 'चराचर जगत' से जुड़ जाता है।



### 3. साक्ष्य भाव –

सबसे पहले हम इसके अर्थ को समझते हैं, यह शब्द कहाँ से आया और इसका वास्तविक मतलब क्या है -

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया..."

#### श्वेताश्वतर उपनिषद्

इसका अर्थ है कि एक ही वृक्ष (शरीर) पर दो पक्षी बैठे हैं। एक पक्षी वृक्ष के फल चख रहा है (जो हमारे कर्मों का भोग करने वाला 'जीव' है), जबकि दूसरा पक्षी केवल चुपचाप देख रहा है—वह कुछ खाता नहीं, केवल 'द्रष्टा' है। यही दूसरा पक्षी 'साक्षी' है। यहीं से यह विचार आया कि हमारे भीतर एक ऐसा तत्व है जो कर्मों में लिप्त नहीं होता, बस उन्हें देखता है। वह '**आत्म- तत्व**' कहलाता है।

महर्षि कपिल द्वारा प्रतिपादित **सांख्य दर्शन** ने इस अवधारणा को दार्शनिक आधार दिया। उनके अनुसार सांख्य में दो तत्व प्रधान हैं: **प्रकृति** और **पुरुष**।

श्रीमद्भगवद्गीता का 'क्षेत्रज्ञ' भी इसी भाव को लिए हुए है।

आदिशंकराचार्य ने साक्षी भाव पर बल देते हुए, उन्होंने बताया कि मन के विकार (काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह) इनका क्रम लगा रहता है, लेकिन जो इन सबके आने और जाने को जानता है, वह '**साक्षी चैतन्य**' है। जैसे किसी फ़िल्म में आग लगे या पानी गिरे, पर्दे पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वैसे ही साक्षी पर संसार की परिस्थितियों का कोई असर नहीं होता। साक्षी भाव में, जहाँ व्यक्ति केवल अपनी सांसें और संवेदनाओं को तटस्थ होकर देखता है। साक्षी भाव से बुद्धि निर्मल, स्वतंत्र, वैश्विक हित में होती है। हम भावुक होकर निर्णय नहीं लेते, बल्कि जीवन की प्रत्येक स्थिति को साक्षी होकर देखते हैं, तो हमारे निर्णय अधिक न्यायपूर्ण और लोक-कल्याणकारी होते हैं। जब हम साक्षी भाव में होते हैं, तो हम अपनी अंतहीन इच्छाओं और लालच को देख पाते हैं। यह जागरूकता हमें प्रकृति के साथ संतुलित जीवन जीने की प्रेरणा देती है। साक्षी भाव केवल व्यक्तिगत मोक्ष का मार्ग नहीं है, बल्कि यह एक '**वैश्विक चेतना**' है। यदि मनुष्य स्वयं का साक्षी बनना सीख जाए, तो वह पूरे विश्व के प्रति अधिक करुणामय और प्रेमपूर्ण हो जाएगा, क्योंकि उसे हर परिस्थिति में सत्य को देखने की दृष्टि प्राप्त हो जाएगी।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि मनुष्य **संतोष** से तृप्त होता है, **धैर्य** से स्थिर होता है और **क्षमा** से पीड़ा से मुक्त, तब **आत्म- विश्लेषण** के सूप से वह अपने जीवन के 'सार तत्व' यानी **परम शांति** को प्राप्त कर लेता है। आधुनिक काल में शांति की अवधारणा महज युद्ध की अनुपस्थिति या बाहरी कोलाहल नहीं, बल्कि यह प्रत्येक मनुष्य की अपनी इच्छा है। वर्तमान युग जिस भौतिकवादी अंधी दौड़ का साक्षी और भोगी है, वह पश्चिम के उस उपभोक्तावादी दर्शन की देन है, जिसमें स्व को महत्त्व दिया गया है। जब व्यक्ति धन और विलासिता को ही जीवन का केंद्र मान लेता है, तब उसकी चेतना और उसके प्रयास संकुचित होकर केवल 'स्व' तक सीमित हो जाते हैं। यह स्व-केंद्रित व्यवहार उसे एक ऐसे मानसिक मरुस्थल की ओर ले जाता है, जहाँ धैर्य का लोप और निरंतर फल की इच्छा उसे कभी तृप्त नहीं होने देती।

हमने अपने इस विस्तृत अध्ययन में शांति के जिन विभिन्न रूपों—आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक शांति—का विश्लेषण किया है, वे सभी इसी ओर संकेत करते हैं कि वास्तविक शांति एक त्रि-आयामी प्रक्रिया है। यह व्यक्तिगत स्तर पर आत्म-शुद्धि, सामाजिक स्तर पर सह-अस्तित्व और वैश्विक स्तर पर पारिस्थितिक संतुलन की मांग करती है।

भारतीय सनातन संस्कृति की विशेषता है कि भौतिकवादी प्रवृत्ति और विलासता का निषेध ही नहीं, बल्कि उसे आध्यात्मिक अनुशासन के अधीन रखने की बात करती है। कबीर और रैदास जैसे बहुत सारे समाज - सुधारकों ने यह सिद्ध किया कि वास्तविक शांति कर्म की शुचिता में निहित है। साथ ही यह प्रमाणित किया कि समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को निभाते हुए, विकारों से मुक्त रहकर समाज को नई दिशा दी जा सकती है।



शांति का मार्ग भौतिकता के पूर्ण परित्याग में नहीं, बल्कि उसके प्रति पूर्ण आसक्ति के परित्याग में है। जब मनुष्य अपनी वैयक्तिक महत्वाकांक्षाओं और सामाजिक स्थिति के अहंकार से ऊपर उठकर आत्म-चिंतन करता है, तभी वह उस शाश्वत संतोष को प्राप्त कर पाता है जो उसे केवल स्वयं के लिए नहीं बल्कि संपूर्ण चराचर जगत के कल्याण के लिए प्रेरित करता है। निष्कर्षतः, आधुनिक मनुष्य के लिए शांति की प्राप्ति का एकमात्र मार्ग यही है कि वह पश्चिम के भौतिकवाद और पूर्व के अध्यात्म के बीच एक विवेकपूर्ण संतुलन स्थापित करे, जिससे उसके जीवन में बाहरी वैभव के साथ-साथ आंतरिक गरिमा का भी समावेश हो सके।

समत्व, प्रेम और करुणा की इस वैचारिक गंगा का अंतिम पड़ाव **साक्षी योग** में आकर एक ऐसी प्रशांत महासागर जैसी स्थिरता प्राप्त करता है, जहाँ शब्द मौन हो जाते हैं और केवल बोध शेष रह जाता है। यह यात्रा केवल सिद्धांतों का संकलन नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर एक 'द्रष्टा' के जन्म की गाथा है।

समत्व वह आधारशिला है, जो हमें जीवन के द्वंद्वों—हर्ष-विषाद, जय-पराजय—के बीच अडिग रहना सिखाती है। जब यह समता हृदय की गहराइयों में उतरती है, तो वह 'प्रेम' बनकर फूटती है। जहाँ व्यक्ति दूसरे में भी अपनी ही आत्मा का प्रतिबिम्ब देखने लगता है। इसी प्रेम की परिपक्व और सक्रिय अवस्था 'करुणा' है। करुणा वह ऊष्मा है जो दूसरे के दुख को देखकर पिघल जाती है और 'यज्ञ' भाव से सेवा में प्रवृत्त होती है। यहाँ 'वसुधैव कुटुंबकम्' केवल एक विचार नहीं रह जाता, बल्कि एक जीवंत अनुभव बन जाता है, जहाँ संपूर्ण चराचर जगत अपना ही परिवार प्रतीत होता है।

साक्षी योग इस पूरी यात्रा को वह शिखर प्रदान करता है जहाँ पहुँचकर व्यक्ति 'कर्ता' के अहंकार से मुक्त होकर 'द्रष्टा' के आनंद में स्थित हो जाता है। यह वह स्थिति है जहाँ मनुष्य संसार के रंगमंच पर अपना पात्र तो पूरी कुशलता से निभाता है, लेकिन भीतर से वह उस शांत दर्शक की भांति होता है जो जानता है कि यह सब एक परिवर्तनशील लीला मात्र है। साक्षी भाव हमें वह 'सजग विराम' देता है, जो हमें परिस्थितियों की आसक्ति से बचाता है।

वास्तविक और स्थाई शांति किसी बाहरी संधि या व्यवस्था से नहीं, बल्कि व्यक्ति के भीतर 'स्व' से 'सर्व' तक की इस यात्रा से ही संभव है। जब मनुष्य साक्षी भाव की तटस्थता और करुणा की कोमलता का अद्भुत संतुलन साध लेता है, तब वह '**स्थितप्रज्ञ**' बन जाता है। ऐसा व्यक्तित्व स्वयं में एक जलते हुए दीपक के समान है, जो न केवल खुद शांत रहता है, बल्कि अपने संपर्क में आने वाले हर जीव को अभय और शांति का दान देता है। यही वह परम सत्य है जहाँ व्यक्तिगत चेतना वैश्विक चेतना में विलीन होकर पूर्णता प्राप्त करती है।

## संदर्भ सूची-

1. बृहदारण्यक उपनिषद् और 'ईशावास्योपनिषद्'
2. ऋग्वेद 1.89.1
3. श्रीमद्भागवत गीता के अध्याय 2, श्लोक 70
4. यजुर्वेद (36.17)
5. चरक संहिता का यह श्लोकांश
6. 'यंग इंडिया' (Young India) पत्रिका, अंक: 1925 और उनकी आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' (My Experiments with Truth)।
7. 'धम्मपद' (Dhammapada) - श्लोक 103 (सहस्सवग्गो)।
8. 'The Life Divine' (Book 2, Chapter: The Evolution of the Spiritual Man)।
9. योगसूत्र (समाधि पाद, सूत्र 2)



Cover Page



2 2 7 7 - 7 8 8 1



**INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH**

**ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286**

**Peer-Peer Reviewed, Refereed & Open Access International Journal - As per UGC Norms  
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)**

**Volume:15, Issue:4(1), April 2026**

**Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A**

**Article Received: Reviewed: Accepted**

**Publisher: Sucharitha Publication, India**

**Online Copy of Article Publication Available: [www.ijmer.in](http://www.ijmer.in)**

- 
10. 'कंप्लीट वर्क्स ऑफ स्वामी ' (Vol. 2, 'The Real Nature of Man') |
  11. श्रीमद्भागवत गीता के अध्याय 2,(अध्याय 2, श्लोक 48)
  12. कबीर की 'साखी'
  13. रामधारी सिंह 'दिनकर' कुरुक्षेत्र' के तीसरे सर्ग